उच्च न्यायालय उत्तराखण्ड, नैनीताल

रिट पिटीशन संख्या 2760 (एम/एस) वर्ष 2014

चरनजीत सिंह एवं अन्य.....याचिकाकर्ता

बनाम

श्रीमती किरन एवं अन्य.....प्रत्यर्थी

अधिवक्तागणः
याचिकाकर्ता की ओर से– श्री नीरज गर्ग, अधिवक्ता
प्रत्यर्थी की ओर– श्री पियूष गर्ग, अधिवक्ता

माननीय लोकपाल सिंह जे.

याचिकाकर्ताओं ने सिविल पुनरीक्षण संख्या 130 वर्ष 2014 श्रीमती किरन बनाम चरनजीत सिंह व अन्य में विद्वान जिला न्यायाधीश, देहरादून द्वारा पारित आक्षेपित निर्णय और आदेश दिनांकित 24.11.2014 को चुनौती दी है जिसमें विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा विद्वान द्वितीय अतिरिक्त सिविल जज (सी.डी.) देहरादून द्वारा मूल वाद संख्या 481 वर्ष 2001 श्रीमती किरन बनाम श्रीमती रंजना (अब मृतक) व अन्य में पारित आदेश दिनांकित 31.07.2014 को अपास्त कर दिया गया था।

2. मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 ने मूल वाद संख्या 481 वर्ष 2001 श्रीमती किरन बनाम श्रीमती रंजना (अब मृतक) व अन्य प्रतिवादियों के विरूद्ध प्रतिषेधात्मक निषेधाज्ञा की डिक्री के लिये योजित किया। प्रतिवादी संख्या 1 श्रीमती रंजना के विरूद्ध जारी किये गये समन की पर्याप्त तामील के उपरांत भी वह उपस्थित नहीं हुई व उनके द्वारा अपना जबावदावा दाखिल नहीं किया गया तब विद्वान विचारण न्यायालय द्वारा दिनांक 23.10.2003 को एकपक्षीय कार्यवाही करने का आदेश पारित किया गया।

3. प्रतिवादी संख्या 1 श्रीमती रंजना द्वारा दिनांक 23.10.2003 को पारित आदेश को वापस लेने के लिये दिनांक 20.04.2005 को एक प्रार्थनापत्र कागज संख्या 37–ग–2 योजित किया गया। उपरोक्त प्रार्थनापत्र के लंबित रहने के दौरान श्रीमती रंजना का निधन हो गया। श्रीमती रंजना के विधिक उत्तराधिकारी द्वारा प्रतिस्थापन हेतु प्रार्थनापत्र योजित किया गया जिसे स्वीकृत किया गया तथा उन्हें श्रीमती रंजना के विधिक उत्तराधिकारी के रूप में प्रतिस्थापित किये जाने की अनुमति प्रदान की गयी।

4. विद्वान विचारण न्यायालय ने आदेश दिनांकित 09.11.2011 के द्व ारा आदेश दिनाांकित 23.10.2003 को वापस लेने सम्बन्धित प्रार्थनापत्र को स्वीकार करते हुए दिनांक 30.11.2011 की तिथि नियत थी तथा याचिकाकर्ताओं को दिनांक 30.11.2011 तक अपना जबावदावा दाखिल करने की अनुमति प्रदान की। विद्वान विचारण न्यायालय के द्वारा याचिकाकर्ताओं को अपना जबावदावा करने हेतु समय प्रदान किये जाने के बावजूद भी याचिकाकर्ताओं ने निर्धारित समयावधि के अन्तर्गत अपना जबावदावा दाखिल नहीं किया गया। तत्पश्चात याचिकाकर्ताओं के द्वारा दिनांक 15.07.2013 को अपना जबावदावा दाखिल किया गया। याचिकाकर्ताओं के द्वारा अपना जबावदावा दाखिल करते समय जबावदावा दाखिल करने में हुये विलम्ब को माफ किये जाने की याचना नहीं की गयी, इस पर वादी के द्वारा एक प्रार्थनापत्र इस आशय से योजित किया गया कि चूंकि जबावदावा निर्धारित समयावधि के अन्तर्गत दाखिल नहीं किया गया है तथा जबावदावा दाखिल करने में हुये विलम्ब को माफ किये जाने की याचना नहीं की गयी है इसलिये याचिकाकर्ताओं के द्वारा दाखिल किये गये जबावदावे को पत्रावली से अलग कर दिया जाये। इस प्रार्थनापत्र पर याचिकाकर्ताओं द्वारा अपनी आपत्ति प्रस्तुत की गयी तथा एक प्रार्थनापत्र कागज संख्या 106ग इस आशय से योजित किया गया कि जबावदावा योजित किये जाने में कोई विलम्ब

नहीं हुआ है। यदि न्यायालय जबावदावा दाखिल किये जाने में विलम्ब पाता है तो इस विलम्ब को माफ किया जाए। तब विद्वान विचारण न्यायालय के द्वारा आदेश दिनांकित 31.07.2014 के द्वारा याचिकाकर्ताओं के द्वारा योजित किये गये प्रार्थनापत्र कागज संख्या 106ग को मु0 एक हजार रूपये के हर्जाने पर इस तर्क के साथ स्वीकार किया गया कि वाद को गुणदोष के आधार पर निर्णित किया जाना चाहिए। यद्यपि याचिकाकर्ताओं के द्वारा न तो जबावदावा विलम्ब से दाखिल किये का कोई युक्तियुक्त स्पष्टीकरण दिया गया और न ही जबावदावा दाखिल किये जाने में हुये विलम्ब के कारणों को स्पष्ट किया गया परन्तु विचारण न्यायालय के द्वारा यह तर्क देते हुए कि वाद को गुण दोष के आधार पर निर्णित किया जाना चाहिए। प्रार्थनापत्र को स्वीकार कर जबावदावे को पत्रावली कर लिया गया।

5. इस आदेश से व्यथित होकर वादी के द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 उत्तराखण्ड राज्य सरकार के द्वारा यथासंधोति के अन्तर्गत सिविल पुनरीक्षण योजित किया गया। धारा 115 सिविल प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत संशोधित प्रावधान निम्नवत हैं–

> 115. पुनरीक्षण –(1) उच्चतर न्यायालय अधीनस्थ न्यायालय द्वारा मूल वाद या अन्य कार्यवाही में विनिश्चित किये गये मामले में पारित आदेश का पुनरीक्षण कर सकेगा, जहां कोई अपील आदेश के विरूद्ध दाखिल नहीं होती और जहां अधीनस्थ न्यायालय ने–
>
> (क) ऐसी अधिकारिता का प्रयोग किया है, जो उसमें विधि द्वारा निहित न की गयी हो, या
>
> (ख) इस प्रकार निहित अधिकारिता का प्रयोग करने में असफल रहा है, या

(ग) अपनी अधिकारिता के प्रयोग में अवैधता से या तात्विक अनियमितता से कार्य किया ह।

(2) उपधारा (1) के अधीन पुनरीक्षण आवेदन में, जब उच्च न्यायालय में दाखिल किया जाता है, ऐसे आवेदन के प्रथम पृष्ठ पर, वाद के शीर्षक के नीचे इस प्रभाव का प्रमाण पत्र अन्तर्विष्ट होगा कि मामले में कोई पुनरीक्षण जिला न्यायालय में दाखिल नहीं होता किन्तु या तो मूल्यांकन के कार्य या पुनरीक्षित किये जाने के लिये ईप्सित आदेश के जिला न्यायालय द्वारा पारित किये जाने के कारण केवल उच्च न्यायालय में दाखिल होता है।

(3) उच्चतर न्यायालय, इस धारा के अधीन, किये गये किसी आदेश को भिन्न कर सकेगा या उलग सकेगा सिवाय वहां के, जहां–

(i) आदेश, यदि वह पुनरीक्षण के लिये आवेदन करने वाले पक्षकार के पक्ष में किया गया है, वाद या अन्य कार्यवाही को अन्तिम रूप से निस्तारित करेगा, या

(ii) आदेश, यदि स्थिर रहने के लिये अनुज्ञात किया जाता है, न्याय की असफलता कारित करेगा, या उस पक्षकार को अपूर्णनीय क्षति कारित करेगा, जिसके विरूद्ध वह किया जाता है।

(4) पुनरीक्षण न्यायालय के समक्ष वाद या अन्य कार्यवाही के स्थगन के रूप में प्रवर्तित नहीं होगा, सिवाय वहां के जहां ऐसा वाद या अन्य कार्यवाही उच्चतर न्यायालय द्वारा स्थगित किया जाता है।

स्पष्टीकरण 1.–इस धारा में–

(i) पद ''उच्चतर न्यायालय'' से अभिप्रेत है–

(क) जिला न्यायालय, जहां उसके अधीनस्थ न्यायालय द्वारा विनिश्चित किये गये मामले का मूल्यांकन्न पांच लाख से अनधिक है,

(ख) उच्च न्यायालय, जहां पुनरीक्षित किये जाने के लिये इप्सित आदेश जिला न्यायालय द्वारा विनिश्चित किये गये मामले में पारित किया गया था जहां जिला न्यायालय के अधीनस्थ न्यायालय द्वारा विनिश्चित किये गये मामले में मूल वाद या अन्य कार्यवाही का मूल्य पांच लाख रूपय से अधिक है,

(ii) पद ''आदेश'' में किसी मूल वाद या अन्य कार्यवाही से विवाद्यक का विनिश्चय करने वाला आदेश शामिल है।

स्पष्टीकरण 2.– इस धारा के प्रावधान इस धारा के प्रारम्भ के पूर्व या बाद में ऐसे प्रारम्भ के पूर्व संस्थित मूल वाद या अन्य कार्यवाही में पारित आदेशों को भी लागू होंगे।

स्पष्टीकरण 3.– इस धारा के प्रावधान धारा के प्रारम्भ के पूर्व उच्च न्यायालय में पहले से दाखिल पुनरीक्षण को लागू नहीं होंगे।

6. विद्वान जिला न्यायाधीश उनके समक्ष उपलब्ध सामग्री व बलवंत सिंह बनाम जगदीश सिंह व अन्य ए0आई0आर 2010 एस0सी0 3043 व संदीप थापर बनाम एस0एम0ई0 टेक्नोलॅजी प्राईवेट लिमिटेड ए0आई0आर0 2014 एस0सी0 897 आदि निर्णयों पर विचार किये जाने के उपरांत के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुंचे विद्वान विचारण न्यायालय के द्वारा बिना किसी युक्तियुक्त कारण के अत्यधिक विलम्ब से योजित किये गये जबावदावे को पत्रावलित किये जाने से सम्बन्धित प्रार्थनापत्र को स्वीकार किया गया। यह भी अभिनिर्धारित किया गया

कि विद्वान विचारण न्यायालय के द्वारा प्रार्थनापत्र को स्वीकार किये जाने का अपने आदेश में कोई भी कारण नहीं दिया गया। इस प्रकार विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा अपने आदेश के द्वारा विचारण न्यायालय के आदेश दिनांकित 24.11.2014 को अपास्त किया गया तथा पुनरीक्षण याचिका को स्वीकार किया गया।

7. इस आदेश से व्यथित होकर प्रतिवादीगणों के द्वारा भारतीय संविधान के अनुच्छेद 227 के अन्तर्गत प्रस्तुत रिट याचिका योजित की गयी है व उत्प्रेक्षण रिट/आदेश दिनांकित 24.11.2014 को अपास्त किये जाने की याचना की गयी।

8. याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता के द्वारा अपने तर्क प्रस्तुत किये गये हैं कि आदेश 8 नियम 1 सिविल प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत दिये गये प्रावधान प्रक्रियात्मक प्रकृति के हैं। आदेश 8 नियम 1 सिविल प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत दिये गये प्रावधान न्याय की उन्नति के लिये हैं। उनके द्वारा पुनः यह तर्क प्रस्तुत किये गये कि वर्तमान वाद में आदेश 8 नियम 1 के संशोधित प्रावधान लागू होते हैं। पुनः उनके द्वारा यह तथ्य स्वीकार किया गया कि विचारण न्यायालय के द्वारा याचिकाकर्ताओं के द्वारा योजित प्रार्थनापत्र को मु0 1,000/–रूपये हर्जाने पर स्वीकार करते समय कोई भी कारण लेखबद्ध नहीं किये गये। पुनः यह तर्क प्रस्तुत किये गये कि पुनरीक्षण न्यायालय के द्वारा पुनरीक्षण याचिका को स्वीकार करते समय अवैधता कारित की गयी, न्याय के दरवाजे याचिकाकर्ताओं के लिये बंद नहीं होने चाहिए। पुनः उनके द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि पुनरीक्षण न्यायालय के द्वारा मामले को पुनः विचार किये जाने हेतु विचारण न्यायालय को वापस भेजना चाहिए था। यह वैकल्पिक रूप से हर्जाने में वृद्धि करनी चाहिए थी। याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता के द्वारा न्याय निर्णय **जोल्वा बनाम केशाओं व**

अन्य (2008) 11 एससीसी 769, सूर्या देव राय बनाम राम चंदर राय व अन्य (2003) 6 एससीसी 675, श्रीमती अंजू त्यागी व अन्य बनाम सिविल जज सी0डि0 व अन्य (2011) 2 यूएडी 656 का संदर्भ दिया गया।

9. खण्डन स्वरूप प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता के द्वारा तर्क प्रस्तुत किये गये चूंकि मूल प्रतिवादी श्रीमती रंजना के द्वारा समन की पर्याप्त तामीली के पश्चात् भी निर्धारित समयावधि के अन्तर्गत अपना जबावदावा योजित नहीं किया गया इसलिये न्यायालय के द्वारा उनके विरूद्ध एकपक्षीय कार्यवाही अग्रसारित की गयी। तत्पश्चात् उनके द्वारा एकपक्षीय दिनाकित 23.10. 2003 को वापस लिये जाने हेतु एक प्रार्थनापत्र प्रस्तुत किया गया जब याचिकाकर्ता के विधिक प्रतिवादीगणों को प्रतिस्थापित कर दिया गया था तब उक्त प्रार्थनापत्र दिनांक 09.11.2011 को स्वीकार किया गया तथा याचिकाकर्ताओं को पुनः दिनांक 30.11.2011 तक अपना जबावदावा प्रस्तुत किये जाने हेतु समय प्रदान किया गया। अग्रत्तेर यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि याचिकाकर्ताओं को पुनः पर्याप्त अवसर दिये जाने के बावजूद भी याचिककर्ताओं के द्वारा निर्धारित समयावधि के अन्तर्गत अपना जबावदावा प्रस्तुत नहीं किया गया। हालांकि याचिकाकर्ताओं के द्वारा एक साल सात माह पन्द्रह दिन व्यतीत हो जाने के उपरांत दिनांक 15.07.2013 को जबावदावा योजित किया गया। प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता के द्वारा यह तर्क भी प्रस्तुत किये गये कि विलम्ब माफी हेतु प्रस्तुत किये गये प्रार्थनापत्र में जबावदावा विलम्ब से योजित किये जाने का कोई भी युक्तियुक्त कारण अथवा स्पष्टीकरण नहीं दिया गया।

10. प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता के द्वारा माननीय सर्वोच्च न्यायालय के द्वारा पारित नवीनतम न्याय निर्णय **प्रह्लाद शंकरराव ताजले एवं अन्य बनाम सचिव (राजस्व) महाराष्ट्र राज्य एवं अन्य 2018 (2) सुप्रीम 487** का संदर्भ दिया है जिसका पैरा संख्या 16 निम्नवत है–

''16.–यह मामला हमें इस न्यायालय के विद्वान न्यायाधीश विवियन बोस जे द्वारा संग्राम सिंह बनाम निर्वाचन अधिकरण कोटा एंड आर, एआईआर 1955 एससी 425 में की गयी टिप्पणियों की याद दिलाता है जिसमें उन्होंने अपनी विशिष्ट लेखन शैली से सभी न्यायालयों को याद दिलाया कि कैसे सिविल प्रक्रिया संहिता को पक्षकारों के अधिकारों के संदर्भ में समझा जाना चाहिए, जो उनके जीवन और सम्पत्ति को प्रभावित करता है। उन्होंने यह भी याद दिलाया कि जहां तक संभव हो प्रक्रियात्मक विधि को दंडात्मक प्रावधान के रूप में नहीं समझा जाना चाहिए। निम्नलिखित प्रस्तर सर्वश्रेष्ठ है, जिसका हमेशा पक्षकारों को पूर्ण न्याय देने के लिये अनुसरण किया जाता है।

> ''प्रक्रिया संहिता को इस तरह माना चाहिए जैसे कि इसे न्याय को सुगम बनाने और उसके लक्ष्यों को आगे बढ़ाने के लिये प्रारूपित किया गया है न कि दंड और दंड के लिये दंडात्मक अधिनियम के रूप में। किसी धारा का बहुत अधिक तकनीकी अभिप्राय जो कि उसके निर्वचन के लिये कोई युक्तियुक्त लचीलेपन की गुंजाइश न रखे, नहीं किया जाना चाहिए। (बशर्ते दोनों पक्षों के साथ हमेशा न्याय किया गया हो) ऐसा न हो कि न्याय को अग्रसारित किये जाने के उद्देश्य से बनाये गये साधनों का उपयोग इसे विफल करने के लिये किया जाए। हमारे प्रक्रियात्मक कानून नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत पर आधारित हैं जिसके लिये यह आवश्यक है कि किसी व्यक्ति को अनसुना नहीं किया जाना चाहिए, उनके पीठ पीछे फैसले नहीं लिये जाने चाहिए, उनकी अनुपस्थिति में उनके जीवन

और संपत्ति को प्रभावित करने वाली कार्यवाही अग्रसारित नहीं रखनी चाहिए और यह कि उन्हें उस प्रक्रिया में भाग लेने से रोका नहीं जाना चाहिए। बेशक, अपवाद होने चाहिए और जहां उन्हें स्पष्ट रूप से परिभाषित किया गया है, उन्हें लागू किया जाना चाहिए। परन्तु अधिकांशतः व उस प्रावधान के अधीन हमारे प्रक्रिया के कानूनों को उस सिद्धांत के आलोक में, जहां भी उचित रूप से संभव हो, समझा जाना चाहिए।''

11. प्रत्यर्थीगण के विद्वान अधिवक्ता द्वारा माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित एक अन्य निर्णय **एटकॉम टैक्नोलॉजीस बनाम वाई.ए. चुन्नावाला एवं कम्पनी व अन्य (2018) 6 एससीसी 639** का संदर्भ दिया गया जिसमें आदेश 8 नियम 1 सिविल प्रक्रिया संहिता के उद्देश्यों पर विचार–विमर्श किया गया। जिसके सुसंगत प्रस्तर संख्या 20, 21 व 22 निम्नवत हैं–

''20. यह प्रावधान कई मामलों में इस न्यायालय के समक्ष व्याख्या के लिये आया है। निःसंदेह, शब्द 'नब्बे दिनों के बाद में नहीं होगा' इस समयावधि के उपरांत जबावदावे को स्वीकार करने की न्यायालय की शक्ति को नहीं छीनता हैं और यह भी माना जाता है कि यह प्रावधान प्रक्रियात्मक प्रकृति का है। यह अधिष्ठायी विधि का हिस्सा नहीं है। साथ ही इस न्यायालय ने यह भी आदेश दिया है कि केवल असाधारण मामलों में ही समय बढ़ाया जा सकता है। हम सलेम एडवोकेट बार एसोसिएशन तमिलनाडु बनाम भारत संघ (2005) 6 एससीसी 344 के मामले में की गयी निम्नलिखित चर्चा को पुनः प्रस्तुत करना चाहेंगेः

''21।.....आदेश 8 नियम 10 में ऐसा कोई प्रतिबंध नहीं है कि नब्बे दिनों की समाप्ति के बाद और समय नहीं प्रदान किया जा सकता है। न्यायालय के पास ''वाद के सम्बन्ध में ऐसा आदेश देने की व्यापक शक्ति है जो वह उचित समझे''। स्पष्ट रूप से इसलिये, जबावदावा दाखिल करने के लिये 90 दिनों की उपरी सीमा प्रदान करने वाले आदेश 8 नियम 1 के प्रावधान निर्देशानात्मक प्रकृति के हैं। इतना कहने के बाद, हम यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि जबावदावा दाखिल करने के लिये समय बढ़ाने का आदेश रूटीन प्रक्रिया में नहीं दिया जा सकता है। केवल असाधारण मामलों में ही समय बढ़ाया जा सकता है। समय बढ़ाते समय यह ध्यान रखना होगा कि विधायिका ने अधिकतम समय सीमा 90 दिन निर्धारित की है। समय बढ़ाने के लिये न्यायालय के विवेक का त्वरिता से नियमित रूप से प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए जिससे कि आदेश 8 नियम 1 द्वारा निर्धारित की गयी अवधि प्रभावहीन न हो जाए।''

21. ऐसी स्थिति में, तीस दिनों के भीतर जबावदावा दाखिल न करने के लिये एक वैध कारण का तर्क देने और संतोषजनक रूप से दर्शित करने का दायित्व प्रतिवादी के उपर होता है। जब यह एक आवश्यकता है, तो क्या यह 5 वर्ष से अधिक देरी को माफ करने का आधार हो सकता है, भले ही इसकी गणना वर्ष 2009 से की गयी हो, केवल इस कारण से कि समन 2009 तक तामील नहीं किया गया था?

22. हम उच्च न्यायालय द्वारा देरी को माफ करने के लिये दिये गये इस तरह के तर्क से खुद को समझाने में विफल रहते हैं जिससे सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 के आदेश 8 नियम 1 के प्रावधानों और इसमें अन्तर्निहित भावना की अवहेलना होती है। उच्च न्यायालय का यह कारण कि देरी को 'अधिकारों और साम्य् को संतुलित करके' माफ कर दिया गया था, दूर की कौड़ी है और इस प्रक्रिया में, जबावदावा दाखिल करने में हुई असमान्य देरी के सुसंगत कारण को संबोधित किये बिना माफ कर दिया गया है। क्या प्रतिवादियों ने इस तरह के विलम्ब के लिये उचित और संतोषजनक स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया था। उच्च न्यायालय का इस प्रकार का दृष्टिकोण स्पष्टताः कानूनी रूप से त्रुटिपूर्ण है और इसका समर्थन नहीं किया जा सकता है। निःसंदेह सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 के आदेश 8 नियम 1 के प्रावधान प्रक्रियात्मक प्रकृति के हैं और इसलिये, न्याय की दासी हैं। हालांकि इसका मतलब यह नहीं होगा कि देरी के लिये युक्तियुक्त व सारवान् कारण बताये बिना प्रतिवादी को जबावदावा दाखिल करने में जितना समय चाहिए उतना समय लेने का अधिकार है और उच्च न्यायालय को बिना न्यायिक विवेक का उपयोग किये इसे माफ करने का।

12. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ता को सुनने और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन करने के पश्चात् इस न्यायालय का मत है कि विद्वान विचारण न्यायालय के द्वारा बिना कोई कारण लेखबद्ध किये याचिकाकर्ताओं द्वारा योजित किये गये प्रार्थनापत्र को अवैध रूप से स्वीकार कर लिया गया था। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **उत्तरांचल राज्य और अन्य**

बनाम सुनील कुमार वैश और अन्य 2011 (8) एससीसी 670 में पारित किये गये मामले में अवधारित किया है कि न्यायिक निर्णयों को सैद्धांतिक रूप से उचित होना चाहिए और न्यायिक निर्णयों की गुणवत्ता मुख्य रूप से उसमें उल्लिखित कारणों पर निर्भर करती है। उचित तर्क एक अनिवार्य आवश्यकता है जिसे त्वरिता के लिये अनदेखा नहीं किया जाना चाहिए।

13. विद्वान पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा यह निष्कर्ष दिया गया कि याचिकाकर्ताओं के द्वारा जबावदावा दाखिल करने में हुई देरी के लिये कोई युक्तियुक्त कारण नहीं दिया गया तथा प्रतिवादी द्वारा योजित प्रार्थनापत्र को अवैध रूप से स्वीकार कर लिया गया है। इस न्यायालय के मत में चूंकि याचिकाकर्ताओं द्वारा जबावदावा दाखिल करने में देरी के लिये कोई युक्तियुक्त स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है इसलिये बिना कोई कारण लेखबद्ध किये विद्वान विचारण न्यायालय के द्वारा प्रार्थनापत्र को स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए था। याचिकाकर्ता अपनी निष्क्रियता व उचित समयान्तर्गत जबावदावा दाखिल करने में हुई लापरवाही का लाभ नहीं उठा सकते हैं। मैं आक्षेपित निर्णय और आदेश में कोई अवैधता, अनौच्यिता व क्षेत्राधिकार सम्बन्धी त्रृटि नहीं पाता हूं। रिट याचिका खारिज किये जाने योग्य हैं। इसलिये इसे खारिज किया जाता है।

14. इस तथ्य पर विचार करने के बाद कि मूल वाद वर्ष 2001 में योजित किया गया है, विद्वान विचारण न्यायालय वाद को शीघ्रता से निर्णीत करने का यथासंभव प्रयास करेगा और मामले में अनावश्यक स्थगन स्वीकार नहीं करेगा।

15. हर्जाने के सम्बन्ध में कोई आदेश नहीं पारित किया जाता है

(लोकपाल सिंह जे.)

बलवंत

23.10. 2018